सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं
आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

प्रकाशन तिथि – 01.10 2016

एक प्रति : रू. २०
द्विवार्षिक : रू. ३६०

वर्ष : 49, अंक : 7
अक्टूबर 2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 7

अक्टूबर
2016

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

तद् ब्रह्म न स्मरसि

पातालमाविशसि यासि नभो विलंध्य,
दिमण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनानं,
तद् ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन।।

अर्थात्

रे मन ! तू अपने चाञ्चल्य से कभी तो पाताल में घुस जाता है, कभी तो ऊँचे से ऊँचे आकाश तक को पार कर जाता है, कभी सब दिशाओं का चक्कर काट जाता है। जब जहाँ के विषय की लालसा होती है, तब वहाँ पहुँच जाते हो, परन्तु भ्रम से भी कभी निर्मल और आत्म–हितकारी उस परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन नहीं करता जिससे यथार्थ सुख प्राप्त होता है।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 8
3. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा–डॉ. विजय सिंह 13
4. भक्तियोग–प्रो. ऋषिराम शर्मा 16
5. निर्वाणाष्टक–जगदीश राए बंसल 25
6. ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह न विद्येत 28
7. शुभ–सूचना 31
8. वाराणसी में योग शिविर 32
9. गोरखपुर में योग एवं आयुर्वेद सम्मेलन सम्पन्न–आचार्य डॉ. दासलाल 33
10. योग मार्ग में विघ्न 35
11. अभ्युदय–निःश्रेयस सिद्धि का साध्य योग–एक साधक 38
12. भक्ति–भूपेन्द्र 'अंकुश' 40

एक प्रति	: रु.	20.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	180.00
द्विवार्षिक	: रु.	360.00
आजीवन	: रु.	1000.00

आनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण और उनका योग-ऐश्वर्य

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगी का भूतजय एवं अणिमादिक की प्राप्ति

एक साधक योगी पंच महाभूतों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए संयम करता है और उनका साक्षात्कार करता है। बाद में कठिन प्रयास के बाद वह भूतजय की सिद्धि को प्राप्त करता है और अणिमादिक का अधिकारी बनता है। योग दर्शन में भगवान् पंतजलि देव लिखते हैं :–

स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमाभ्दूतजयः।

अर्थात योग दर्शन में पाँच भूत माने हैं :–

(1) **स्थूल** :– पंच महाभूतों का स्थूल स्वरूप इस प्रकार है जैसे पृथ्वी का पृथ्वी ही स्थूल रूप है और जल का जल ही स्थूल रूप है, वायु का वायु और आकाश का खाली पोल। यही इन पंच महाभूतों में स्थूल रूप है जो स्वरूप हर व्यक्ति को देखने में आता है।

(2) **स्वरूप** :– दूसरा रूप उनका स्वरूप है। उदाहरण के लिए जैसे पृथ्वी में गन्ध, जल में चिकनाहट, अग्नि में गर्मी, वायु में कम्पन और आकाश में पोल। ये इन पंच महाभूतों का स्वरूप है।

(3) **सूक्ष्म** :– तीसरा रूप सूक्ष्म है जिनको तन्मात्र कहा जाता है, जैसे पृथ्वी का तन्मात्र तन्मात्र गन्ध, जल का रस तन्मात्र, अग्नि का रूप तन्मात्र, वायु का स्पर्श तन्मात्र यह पंच महाभूतों का तीसरा रूप है।

(4) **अन्वय** :– चौथा रूप अन्वय है। अन्वय का अर्थ ओत्–प्रोत रहना, जैसे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीनों गुण अपने प्रकाश, प्रवृर्ति और स्थिति वाले धर्मो से सर्वत्र अनुगत रहते हैं यही पंच महाभूत का अन्वय रूप है।

(5) **अर्थवत्व** :– अर्थात् इनका अर्थवान होना इनसे कोई उपकार न हो, लाभ हो, सो ये पाँचों महाभूत योग अपवर्ग के दाता हैं। महाभूत के सम्मिश्रण से ही मनुष्य भोग का भोक्ता है। इसलिए नित्य चेतन आत्मा बौद्धेय धर्मो का अनुगामी होकर पंच महाभूतों में जनित सभी प्रकार के दृश्यात्म भोगों का भोक्ता रहता है। दृश्य का दूसरा कार्य अपवर्ग है

जिस समय जीवन वैराग्य भाव को प्राप्त होकर बराबर सूक्ष्मतर और उसकी सूक्ष्मतम तत्वों में संयम करता हुआ आगे बढ़ता रहता है वह अपवर्ग को प्राप्त कर लेता है। भूतों के इन भिन्न पाँच रूपों में जब तक योगी साक्षात पर्यन्त बराबर संयम करता रहता है तो उसके फलस्वरूप, वह भूत जय को प्राप्त होता है। और भूत जय कर लेने पर:–

ततोऽणिमादिप्रादुर्भाव: काय
संपतद्धर्मानमिद्यातश्च।।

अर्थात्– पंच भूतों पर विजय प्राप्त कर लेने पर अणिमादिक सिद्धियाँ योगी को अनायास ही प्राप्त हो जाया करती हैं। इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यास देव जी लिखते हैं :–

अर्थात्– भूतजय प्राप्त कर लेने पर योगी को अणिमादिक सिद्धियाँ जो अनायास प्राप्त हो जाती हैं:–

(1) **अणिमा :– भवत्यणु :**– अणुमात्र हो जाना।

(2) **लघिमा :– लघुर्भवति :**– हल्का हो जाना।

(3) **महिमा :– महान् भवति :**– बड़ा हो जाना।

(4) **प्राप्ति :– अड्कल्यग्रेणपिस्पृशति :**– अंगुली के अगले भाग से चन्द्रमा को छू लेने की ताकत होना।

(5) **प्राकाम्य :– इच्छाऽनेभिघातो भूमावुन्मज्जति :**– किसी भी प्रकार की इच्छा का न रुकना, पूर्ण हो जाना, चाहे तो योगी जिस प्रकार सर्व साधारण मनुष्य जल में गोता लगा लिया करते हैं और बाहर निकल आया करते हैं इसी प्रकार पृथ्वी में प्रवेश कर बाहर निकल आएँ।

(6) **वशित्वम् :– भूत भौतिकेषुवशी भवति :**– अर्थात् पंच महाभूतों से रहने वाले सभी पदार्थों पर उस योगी का पूर्ण वशीकार होता है और वह स्वयं किसी के वश में नहीं रहता।

(7) **ईशत्व :– तेषाम्पभवोप्यण्यूहानामीष्टे :**– अर्थात् पंच महाभूतों के भौतिक कार्यो को बनाने और बिगाड़ने की सामर्थ्य रखना।

(8) **यत्रकायावसायत्वम: सत्य सड्कल्पस्तथा:** अर्थात् सत्य संकल्पता जैसे योगी की इच्छा होती है पंच महाभूतों का उस प्रकार अवस्थान हो जाता है और इन महासिद्धियों को पाकर योगी सर्व सामर्थ्यवान बन जाता है। महाभूतों का कोई भी कार्य उसके प्रतिकूल नहीं करता प्रत्युत उसको काय सम्पत और प्रगट हो जाती है। काय सम्पति का भगवान् पंतजलि देव ने इस प्रकार कहा है:–

रूप लावण्य बल वज्र सहननत्वनि काय संपत्।

अर्थात् रूप अत्यन्त रूपवान कान्तिवान बज्र के समान दृढ और सब प्रकार अच्छेद्य शरीर वाला हो गया है। सब प्रकार से शरीर की अच्छेद्यता, अभेदता को प्राप्त रहना यह योगी की काय सम्पत्ति है। जो भूतजय प्राप्त होने पर स्वभाव से ही बनी रहती है। साधक सिद्ध योगी को जीवन भर की कठिन साधना के बाद भूत जयता प्राप्त होती है। तब उसके ऊपर भूतों के दुष्परिणाम नहीं हो पाते। भूतजय योगी विषपान करके उसको सहज में ही पचा जाता है और अमृत के गुणों को अपने अन्दर प्रकट कर लेता है। साधना करने वाले योगी को ये सम्पति बड़े कठिन प्रयत्न के बाद प्राप्त हुआ करती है किन्तु अनादि महासिद्ध सदैव ईश्वरः सदैव मुक्तः के स्वरूप को धारण करने वाले अनादि महासिद्ध सर्वतः परिपूरितम श्रीकृष्ण के लिए यह भूत जय आदि ऐश्वर्य अनायास ही प्राप्त है। अतः पूतना के स्तनों से विषपान करने पर भी शरीर में किसी प्रकार का कुप्रभाव न हो करके उसकी काय सम्पति को ज्यों का त्यों बने रहना उस महायोगी के भूत जयात्मक पूर्णाधिकार को पूर्णरूपेण प्रकट करती है।

इससे आगे श्रीमद्भागवत में संकट भंजन जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण अपने पलने में सो रहे थे। कुछ समय बाद उनकी आँख खुली वह भूख के कारण दूध पीने की इच्छा रखते हुए रोने लगे। काफी समय तक यशोदा उन्हें देख नहीं पायी। माता की इस उपेक्षा के कारण भगवान ने थोड़ा सा कोप का अभिनय किया और पास में खड़े हुए एक बड़े भारी संकट अर्थात् बैलगाड़ी को बल से पैर मार कर तोड़ डाला। उस पर काफी दही दूध रखा था वह बर्तन भाड़ों के टूट जाने के कारण पृथ्वी पर फैल गया। सभी वृजवासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी भारी गाड़ी सहसा कैसे टूट गयी। भगवान श्रीकृष्ण के बालसखा छोटे-छोटे बच्चे अपनी तोतली जवान से नन्द बाबा और यशोदा माता को बतलाने लगे कि तुम्हारे लाला इस कन्हैया ने गुस्से में आकर पैर मारकर इस गाड़ी को तोड़ दिया है। सभी बूढ़े-बड़ों के मन में पूरा-पूरा विश्वास नहीं हो पाया क्योंकि श्रीकृष्ण तो अभी बिलकुल छोटे बच्चे थे। अभी तो उन्होंने करवट बदलना ही सीखा था। उनके पैर मारने से संकट का टूट जाना असम्भव-सी बात थी। किन्तु बालों के भंडार अखिल आत्मा श्रीकृष्ण के लिए ये सब खेल जैसी बात थी। उन्होंने अपनी इस अल्पीय-सी अवस्था में ही संकट को पैर मार कर अपने अतुल बल का परिचय दे दिया यह उनका बिना किसी साधना के सहज ऐश्वर्य था। दूसरे योगी इस बल को बड़ी भारी कठिन साधना के द्वारा प्राप्त किया करते हैं तब इतने बन पाते हैं।

बल प्राप्ति का अमोघ साधन

योग दर्शन में भगवान पंतजलि देव अपने शरीर में अतुल बल बढ़ाने का एक अमोघ साधन बतलाते हैं। साधक योगी पहले ब्रह्मचर्य व्रत आदि का पूर्ण रूपेण पालन करके वह बाद में धारणा, ध्यान, समाधि का निरन्तर अभ्यास करके संयम सिद्धि को प्राप्त करे तब अपनी

साधना के बल पर अपने शरीर में हाथियों के बलों को उत्पन्न कर सकता है। चीते जैसी स्फूर्ति ला सकता है, बशर्ते उसने अपनी साधना को लगातार निरन्तर एवं आदर पूर्वक दृढ़ता से अभ्यास करके कठिनता से प्राप्त कर पाया हो भगवान पंतजलि देव बतलाते हैं।

बलेषु हस्तिबलादीनी

यदि योगी बलों के अन्दर संयम करता है तो उसके अन्दर तत्काल हाथी के समान बल बढ़ जाता है, एवं उसका शरीर बज्र के मानिन्द दृढ़ हो जाता है। उसके लिए संकट का तोड़ देना न कुछ के बराबर है किन्तु साधन सिद्धों के लिए यह कार्य उनकी अपनी साधना के बल पर होता है और अनादि काल से स्वतः सिद्ध रहने वाले महान आत्मा श्रीकृष्ण के लिए यह अनायास सहज कर्म था जो उनके ईक्षण मात्र से स्वतः हो गया।

तृणावर्त का बध एवं लघिमा और गरिमा का प्रयोग

भगवान के इससे आगे के चरित्रों के अन्दर तृणावर्त राक्षस की कथा है। यह तृणावर्त बात रूपधारी कंस का एक नौकर था जिसने झंझावात का रूप धारण कर गोकुल में बड़ा भारी तूफान मचा दिया। सम्पूर्ण गोकुल गाँव ब्रज रज से भर गया। उस झंझावात में एक दूसरे के शरीर नहीं दिखाई देते थे। महा अन्धकार छा गया था। माता यशोदा ने अपने बाल गोविन्द को एक ओर जमीन पर बिठा दिया था। राक्षस तृणावर्त का दाँव लग गया और उनको उठाकर आकाश में ले गया। तृणावर्त के मनोभाव जानकर भगवान् ने अपने आपको रूई के मान्दि हल्का बना लिया और उसके वेग के साथ–साथ आकाश में चले गए और तृणावर्त के गले को पकड़े बालक के वेश में छिपे हुए उस दिव्य तेज ने आकाश में पहुँच कर और अपने हाथों में तृणावर्त के गले को पकड़कर गरिमा के प्रयोग से अपने आपको इतना भारी बना लिया कि श्रीमद्भागवत में व्यास देव जी को यह शब्द कहने पड़े :–

तमश्मानं मन्यमान आत्नो गुरुमतया।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्रोदद्भुतार्भकम्।।

अर्थात् उस तृणावर्त राक्षस ने भगवान श्रीकृष्ण को पत्थर के मानिन्द भारी समझा। भगवान ने उसके गले को पकड़ रखा था। भारी प्रयत्न करने पर भी वह अपना गला नहीं छुड़ा सका और अन्त में उसको मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ा। जगदात्मा की ये सारी लीलाएँ योग से ही सम्बन्ध रखने वाली हैं। अन्य जितने अवतार हुए उनमें से किसी ने भी कहीं पर इतने विशेष ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं किया कि उसके चरित्रों से योगिक ऐश्वर्य झलक पड़े। भगवान श्रीकृष्ण का सारा लीला चरित्र योग ऐश्वर्य झलक पड़े। भगवान श्रीकृष्ण का सारा लीला चरित्र योग ऐश्वर्य से परिपूर्ण है किन्तु ये सबके सब कार्य उनमें संकल्प मात्र के थे और यही सब उनकी अनादि काल से चलने वाली सिद्धता है। इस छोटे से लेख में उन जगदात्मा के

अलौकिक योग ऐश्वर्य को यत्किंचित दिखलाने का प्रयत्न किया है। मैं समझता हूँ इन चरित्र के पढ़ने से हर साधक को योग की उत्कृष्टता का ज्ञान अवश्य हो जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध थे किन्तु उन्होंने अपने जीवन में जिस प्रकार अणिमादिक ऐश्वर्य का प्रयोग किया है उस बल की साधना करने वाला योगी भी समय पर प्राप्त कर सकता है। आज भी भारत वर्ष में इस प्रकार के योगी मौजूद हैं जिनकी इस प्रकार की कथाएँ दंत परम्परा से अवगत होती ही रहती हैं। साधारण साधक समुदाय के अन्दर भी लोग अपनी छोटी–मोटी प्राणशक्ति का प्रदर्शन आज दुनियाँ में किया करते हैं सैंकड़ों मन का वजन अपनी छाती पर रखते हैं बैलों की गाड़ी, ट्रक अपने छाती से उतरवाते हैं। ये उनकी प्राण शक्ति का थोड़ा–सा प्रदर्शन होता है इसमें संयम बल की कोई भी साधना नहीं किन्तु प्राण पर थोड़ा सा जय प्राप्त करने पर वे लोग इस प्रकार के अद्‌भुत कर्म करके दिखाया करते हैं। जब मुझसे कोई यह प्रश्न पूछता है कि परमात्मा की ओर चलने वाले मार्गों में आपको कौन–सा प्रिय है तो मुझे उसी समय केवल मात्र लीला तनु धारण करने वाले श्रीकृष्ण जी की स्मृति हठात् आया करती है और मेरी वाणी से एक ही उत्तर मिलता है। परमात्मा की ओर जाने वाले रास्ते बहुत हैं और मुन्डे–मुन्डे मूर्तिभिन्ना के अनुसार अपने मार्गों को योगी तय भी कर लेता है। किन्तु हमारे पूर्वजों ने जिस विद्या का मान किया, श्रीकृष्ण जी की लीला अभिनय के अन्दर जो विद्या पग–पग पर टपकती है वह पवित्र योग विद्या ही है। इस छोटे से लेख में भगवान् श्रीकृष्ण जी की चार–पाँच कथाओं की ओर संकेत करके उनके योग ऐश्वर्य को बतलाने का प्रयत्न किया है।

मनुष्य जिस क्षण भविष्य की चिन्ता का त्याग कर देता है, भूत को भूल जाता है तथा देहाभिमान का त्याग कर देता है, उसी क्षण वह एक उच्चतर अवस्था में पहुँच जाता है।

●सम्पादकीय

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 107 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

कभी-कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथ भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधन के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एव छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों-युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गांव अलुपुर मे इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणीधाम'' में रहकर बहुत समय तक समाधि क अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार के बाल-लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप मे विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारो वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4-5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार-बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगी। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अत: हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वत: होने लगीं। ध्यान की ऊँची-ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठे करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुत: अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। ऊर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलत: श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वत: ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे-धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भुक्ति-मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नम:' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18-20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगढ़धत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था - तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अत: तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवाई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का

अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्‌सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगी। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिहँ दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग-खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने गये तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा – मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्‌गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर नि:शुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी नि:शुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। 'सन्तु सन्तु निरामया:' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना-सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बता कर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट-कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे – यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।'

इस प्रकार से गुरुदेव नि:स्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिये आप कल्पतरू

हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दु:ख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्ववन्ध होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म-साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

(स्त्रियों के विषय में आमतौर पर जनता में इस प्रकार का विचार है कि उनको किसी गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। उसका पति ही उसका गुरु होता है। इसके अतिरिक्त और किसी से दीक्षा प्राप्त करना उपयुक्त नहीं है। लोगों की यह भावना केवल मात्र कपोल-कल्पित ही मालूम पड़ती है। हमारे प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के बहुत से उपाख्यान हैं जिसमें यह भली प्रकार से साबित हो जाता है कि स्त्रियों को अपने कल्याण के लिए यदि सामर्थ्यवान गुरुदेव मिल जाये तो आध्यात्म विकास हेतु दीक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के शरीर में और पुरुषों के शरीर में अन्तर ही क्या है ? हाड़-माँस और चर्म आदि के द्वारा प्रकृति से एक पुतला निर्मित हुआ। लिंग भेद से हम उसे स्त्री कह दें या पुरुष कह दें। यह तो केवल मात्र मन की विडम्बना है। वस्तुत: स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं। आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक। केवल मात्र एक अमर ज्योति के रूप में विशुद्ध प्रकाश है जो हर शरीर को अपना अधिष्ठान बना करके चमकता रहता है। लिंग भेद से जिन नामों द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाता हैं उन्ही नामों से वह व्यावहारिक होता रहता है। यदि उसको स्त्री कहा जाता है तो उसके लिए स्त्री लिंग के शब्दों का प्रयोग होता है और पुरुष कहा जाता है तो पुल्लिंग वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। तत्वत: पुरुषों के अन्दर जो चेतना शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुषों के अन्दर जो मनन करने की शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुष जिस प्रकार से गन्ध ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी गन्ध ग्रहण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार से अपने आपको स्वतन्त्रतापूर्वक सुखी रखना चाहता है, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी अपने आपको सुखी रखना चाहती हैं। जब स्त्रियों का खाना-पीना, सोना-बैठना, बोलना-चालना सब कुछ पुरुषो के समान ही है तो पुरुषों के समान अध्यात्म चिन्तन क्यों नहीं कर सकती ? क्या उनको आत्मोथान का अधिकार नहीं है, क्या वे लोग पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आकर अपने आपको पूर्णरूपेण विकसित नहीं कर सकतीं ? अवश्य कर सकती हैं। आसन, बन्ध, मुद्रायें क्यों नहीं कर सकतीं ?

क्या उन लोगों को बिना शिक्षा के अध्यात्म विद्या प्राप्त हो जाएगी और क्या वे उत्थान कर सकेंगी ? यद्यपि स्त्रियों को पूर्णरूपेण पतिव्रता और पुरुषों को पत्नीव्रत होना ही चाहिए, तभी गृहस्थ में पारस्परिक सुख हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु पतिव्रत पालन में गुरूदेव बाधक नहीं होते, प्रत्युत पूर्णरूपेण सहायक रहते हैं क्योंकि गुरुदेव का स्वरूप मनुष्य के विकृत मन के अन्दर शुद्ध सात्विक प्रकाश को झिलमिला देता है।)

इस प्रकार से मातृ-शक्ति के प्रति गुरुदेव का बड़ा ऊँचा भाव था। और प्राय: कहा करते थे **'यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता '।**

करूणामूर्ति श्री गुरूदेव का 107 वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम सहित उनके अन्य आश्रमों में भी विजया दशमी पर्व बड़े धूम-धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन वेला पर गुरूदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि-कोटि नमन है।

इस पावन अवसर पर मैं सभी गुरु भाई-बहिनों को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ देता हूँ।

अनन्य चेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:

तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्य युक्तस्य योगिन:।।

हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरे में अनन्य चित से स्थित हुआ। सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है। उस निरन्तर मेरे में युक्त हुये योगी के लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

आठवे स्कन्ध के छठे, सातवे, आठवे, नवमे, दसवें एवं इग्यारहवें अध्याय में देवताओं और असुरों का मिलकर समुद्र – मंथन करना, मंथन से प्राप्त अमृत के लिये दोनों का संग्राम रत होना और अन्त में असुरों के पराभव होने पर देवा–सुर संग्राम का समाप्त होने का लोम हर्षक वर्णन उपरोक्त वर्णित छः अध्यायों में अति विस्तार से किया गया है। सिद्ध–योग के सुधी साधक पाठकों हेतु, संक्षेप में योग–संदर्भित विवरणों का उल्लेख इन लेखों में किया जा रहा है।

ब्रह्माजी ने, देवताओं की करुण पुकार सुनकर भगवान हरि के प्रकट होने पर बहुत ही तात्विक स्तुती भगवान का किया–

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु

मुव्यन्नमम्बूद्यमेन च वृत्तिम।

योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां

गुणेषु बुद्धया कवयो वदन्ति।। 2।। स्क 8, अ.6

पुरुषोत्तम ! मनुष्य युक्ति द्वारा लकड़ी से आग, गौसे अमृत समान दूध, पृथ्वी से अन्न, बुद्धि से योग द्वारा आपको प्राप्त कर लेते हैं और अपनी अनुभूति के अनुसार आपका वर्णन भी करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता लोग इस प्रकार स्तुति करके अपनी सारी इन्द्रियों के व्यापार को रोक लिया और बड़ी सावधानी से हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब अन्तर्यामी भगवान ने उनसे कहा– तुम लोग मेरी सलाह सुनो। इस समय तुम लोग दानवों के पास जाकर उनसे सन्धि कर लो। उनसे मिलकर अविलम्ब अमृत निकालने का प्रयत्न करो। जिसे पीकर प्राणी अमर हो जाता है। देवताओं ! विश्वास रक्खो–दैत्यों को मिलेगा केवल श्रम और क्लेश, परन्तु हमारी कृपा से फल मिलेगा तुम्हीं लोगों को। ऐसा कह प्रभु अन्तर्धान हो गये।

दैत्य राज बलि के पास अस्त्र–शस्त्र त्याग कर देवता संधि हेतु गये। बलि तीनों लोक जीत लिया था। इन्द्र ने बड़ी मधुर वाणी से स्वयं नारायण के सुझाव को बलि के संमुख कहा। वह बात दैत्य राज बलि को जँच गयी। तब वे मिलकर अमृतमन्थन के लिये पूर्ण उद्योग करने लगे। दोनों मिलकर मन्दराचल पर्वत को उखाड़ लिया परन्तु समुद्र तक ले जाने में असमर्थ हुये तब भगवान सहसा गरुड़ पर चढ़े प्रकट हुये। खेल–खेल में एक हाथ से मंदराचल को उठाकर गरुड पर रख स्वयं सवार हो गये। देवताओं और असुरों के साथ समुद्रतट की यात्रा की। नागराज वासुकि को नेती के समान मन्दराचल में लपेट समुद्र मंथन आरम्भ किया। अहंकार–वस दैत्य, साँप का पूछ भाग हम नहीं पकड़ेगें कहकर वासुकि के मुख भाग की ओर खड़े होकर बल पूर्वक मंदराचल को घुमाने लगे। परन्तु दैत्यों और देवताओं के अपूर्व बल होने पर भी मंदराचल समुद्र में डूबने लगा।

क्योंकि नीचे कोई आधार नहीं था। उस समय नारायण ने अत्यन्त विशाल कछुये का रूप धारण कर समुद्र में प्रवेश कर मंदाचल को अपने पीठ पर उठा लिया। मंथन के कारण श्रमित वासुकी के विष से दैत्य निश्तेज होने लगे। मंथन के परिणामस्वरूप पहले हालाहल नाम का अत्यन्त उग्र विष निकला। त्रैलोक्य उसके प्रभाव से जलने लगा। तब प्रजापति भगवान सदाशिव की शरण में गये।

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो
विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति।
भीता: प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा
अरक्ष्यमाणा: शरणं सदाशिवम ।।19।। अ.7, स्क.8

त्रिलोकी को भस्म करने वाले इस उग्र विष से आप हमारी रक्षा कीजिये। सारे जगत को बाँधने और मुक्त करने में एक मात्र आप ही समर्थ हैं। इसलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं। क्योंकि आप शरणागत की पीड़ा नष्ट करने वाले जगद्गुरु हैं –

त्वमेक: सर्वजगत ईश्वरो बन्ध मोक्ष यो:।
तं त्वामर्चन्ति कुशला: प्रपन्नार्तिहरं गुरुमा ।।22।। अ.7, स्क.8

प्रभो ! आपके पाँच मुख तत्पुरुष, अंधोर, सद्योजात वामदेव और इशान हैं। उन्हीं द्वारा अड़तालिस कलात्मक मंत्र निकले हैं। जब आप समस्त प्रपंच से उपरत होकर अपने स्वरूप में स्थित होते हैं, उस अवस्था का नाम " शिव " है। यथार्थत: आप ही स्वयं प्रकाश परमार्थतत्व हैं –

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश
यैस्त्रिंशदष्टोत्तर मन्त्र वर्ग:।
यत् तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्व
देव स्वयं ज्योतिखस्थितिस्ते।।29।। अ.7, स्क.8

भगवान आपका परम ज्योतिर्मय स्वरूप स्वयं ब्रह्म है। उसमें गुणों का कोई प्रभाव नहीं है। आपके इस स्वरूप को सारे लोकपाल यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र भी नहीं जान सकते –

न ते गिरित्राखिल लोक पाल–
विरिञ्चि वैकुण्ठ सुरेन्द्र गम्यम्।
ज्योति : परं यत्र रजस्तमश्च
सत्वं नयद् ब्रह्म निरस्तभेदम् ।।31।। अ.7, स्क.8

लोक रक्षण हेतु भगवान शिव ने सोचा मैं अभी इस विष को पी जाता हूँ, जिससे मेरी प्रजा का कल्याण हो। भगवान शंकर बड़े कृपालु हैं। उन्हीं के शक्ति से सर्व प्राणी जीवित रहते हैं। हलाहल विषपान से शंकर जी का कण्ठ नीला पड़ गया। वह उनका भूषण बन गया।

आठवें अध्याय में अमृत प्रकट होने की कथा के साथ भगवान का मोहनी अवतार के कथा

का वर्णन विस्तार से कहा गया है। विष का समन भगवान शंकर द्वारा हो जाने से देवताओं और दैत्यों में नया उत्साह भर गया। वे मंथन में जी जान से जुट गये। समुद्र से कामधेनु पैदा हुई जिसे ब्रह्मवादी ऋषियों ने ग्रहण किया। पश्चात उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा प्रकट हुआ जिसे बलि प्राप्त किया। ऐरावत नाम का श्रेष्ठ हाथी प्रकट हुआ जिसे इन्द्र ने ग्रहण किया। कौस्तुभ मणि भगवान अजीत ने ग्रहण किया। कल्प वृक्ष जो स्वर्ग की शोभा बढ़ाता है प्रकट हुआ। अप्सराओं ने प्रकट होकर देवताओं के साथ होलीं। श्री लक्ष्मी ने प्रकट होते ही भगवान का आश्रय ग्रहण किया। समुद्र मन्थन से कमलनयनी कन्या रूप में वारुणी देवी प्रकट हुई। भगवान की अनुमति से उसे दैत्यों ने ले लिया। इसके पश्चात् मंथन से एक दिव्य चतुर्भुज पुरुष प्रकट हुये, जिनके हाँथों में अमृत कलश था। वह साक्षात् भगवान विष्णु के अंशावतार धनवन्तरि जी थे। दैत्यों ने उनसे अमृत कलश छीन लिया। देवता उदास हो उठे और भगवान के पास गये। उनकी दीन दशा देखकर भगवान ने कहा– तुम सब दुखी मत होवो। मैं अपनी माया से अभी तुम्हारा काम बना देता हूँ।

अमृत लोलुप दैत्य पहले मैं पीऊँगा कहते हुये आपस में कलश की छीना झपटी में व्यस्त थे। उसी समय भगवान ने उनके बीच अद्‌भुत स्त्री का रूप धारण किया। अपनी सलज्ज मुस्कान, तिरछी भौंहें और विलासभरी चितवन से मोहनी रूप धारी भगवान ने दैत्य सेनापतियों के चित्त को कामोद्‌दीपन से उद्‌वेलित कर दिया।

दैत्यों ने मोहनी पर आसक्त हो उसे ही अमृत कलश सौंप दिये। मोहनी रूप भगवान ने दैत्यों से वचन ले लिया कि मैं उचित या अनुचित जो कुछ भी करूँ, वह तुम सभी को स्वीकार्य होगा। मोहित दैत्यों ने कहा– हमें स्वीकार है। देवता और दैत्यों को अलग–अलग दो कतार में बैठा कर पहले देवताओं को अमृत पान कराने लगे। देवताओं ने बड़ी सुगमता से अमृत प्राप्त कर लिया क्योंकि भगवान के आश्रित थे। परन्तु उनसे विमुख होने के कारण असुर गण अमृत से वंचित रह गये।

जिस समय मोहनी देवताओं को अमृत पान करा रहीं थी। राहु दैत्य देवताओं का वेष बनाकर चन्द्रमा और सूर्य के बीच बैठ गया। संकेत से चन्द्रमा एवं सूर्य ने उसका भेद मोहनी को बताया। अमृत पिलाते – पिलाते ही भगवान ने चक्र से राहु का सिर काट दिया। सिर अमर हो गया।

इस प्रकार भगवान ने बड़े–बड़े दैत्यों के सामने ही मोहनी रूप त्याग कर वास्तविक रूप धारण कर लिये। फिर क्या था ? दैत्यों ने तुरन्त देवताओं पर धावा बोल दिया। क्षीर सागर तट पर बड़ा भयंकर देवासुर–संग्राम हुआ। इस युद्ध में विमान पर आरूढ़ दैत्यों ने अद्‌भुत संग्राम किया। आसुरी माया के प्रभाव में देवताओं को बार–बार भयभीत किया परन्तु परमात्मा के प्रकट होते ही असुरों की कपट माया विलीन हो गयी। इस प्रकार दैत्यों के पराभव के पश्चात देवता पुनः अपने–अपने स्वर्ग लोक को चले गये।

इधर शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से मरे हुये वीर असुरों को जीवित कर दिया।

भक्तियोग

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

योगसाधना में भक्तियोग का विशेष महत्व है। परमार्थतः परमात्मा निर्गुण, निराकार, निराधार, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप है। वेदवाणी इस सत्य की पुष्टि करती है कि –

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वंमावतः।
दृश्यते हि अर्थरूपेण पुरुषैः भ्रान्तदृष्टिभिः।।

अर्थात् सभी प्राणियों में परमात्मा सर्वसाक्षी, निष्क्रिय, निर्गुण, सर्वाधार तथा चैतन्यात्मा के रूप में स्थित है, किन्तु माया के द्वारा उस पर आरोपित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विषय तथा चित्तवृत्तियों के रूप में ही अविद्यामोहित जीवों को दिखाई देता है। यही उसकी त्रिगुणात्मिका माया है। ठीक वैसे ही जैसे अबोध बच्चों को पर्दे पर प्रकाश पर आरोपित फिल्म– संसार दिखाई देता है। अतः मायारचित संसार में मायामोहित जीव की मायिक बन्धन से मुक्ति अत्यन्त कठिन असम्भव सी है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि –

अवजानन्ति मां मूढा: मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्ययो।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अर्थात् अज्ञानी जीव ही परमात्मा को साकार समझते हैं, क्योंकि उन्हें परमात्मा के सर्वनियन्ता तथा सर्वव्यापी स्वरूप का ज्ञान नहीं है। अज्ञानी जीव परमात्मा की त्रिगुणात्मिका माया के स्वरूप को भी नहीं समझ सकते और न मायिक बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। माया से मुक्ति पाने के लिए तो मायावी परमेश्वर की शरणागति परमावश्यक है। शरणागति के लिए परमात्मा ने भक्तियोग का विधान किया है, किन्तु भक्तियोग की ब्रह्मधारा केवल सद्गुरु के चरणारविन्दों से प्रवाहित होती है। अतः ईश्वरभक्ति तथा गुरुभक्ति के रहस्यों को जानना अत्यावश्यक है।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि गुरुतत्व तथा परमात्मतत्व भिन्न हैं या अभिन्न। भिन्नता द्वैतभाव का प्रतीक है और द्वैतभाव मायाकृत है और माया भ्रान्तिमूलक अविद्या है, नाम तथा रूप यानि सूक्ष्म तथा स्थूल सभी पदार्थ एवं भाव गुणात्मक हैं और गुणों के क्रमपरिणामों का कार्यरूप हैं। इस विषय में वेद का प्रमाण है कि –

यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृद्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।।
यथा नद्याः स्पन्दमानाः समुद्रे गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपादिविमुक्तः परमं पुरुषं उपैति दिव्यम्।।

अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में हमारा चित्त ही परमात्मा की गुणमयी माया के द्वारा आकाश, सूर्यादि सहित स्वप्न के संसार की रचना कर देता है, पदार्थों की ग्राह्यता तथा ग्राहकता को निद्रा के अविद्याजनित आवरण में सत्य भासित करा देता है, ठीक उसी प्रकार हमारा चित्त ही जागृत संसार का व्यवहार कराता है। नाम तथा रूप की भ्रान्तिरूप अविद्या ही उसे सत्य भासित कराती है। इसीलिए जिस प्रकार नदियाँ रास्तों के अनेकानेक कष्ट झेलती हुई बहती चली जाती हैं और अन्त में अपना नाम तथा रूप से मुक्ति पाकर समुद्र में मिल जाती हैं तब शान्ति प्राप्त करती हैं उसी प्रकार आत्मज्ञ विद्वान नामरूप की अविद्यारूपी माया से मुक्त होने पर परमात्मभाव रूप समुद्र में मिलकर अक्षय सुख तथा शान्ति को प्राप्त करता है। भगवान श्रीकृष्ण इसी सत्य को स्पष्ट करते हैं कि –

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।

अर्थात् सिद्धयोगी हो जाने के बाद अविद्या तथा अस्मिता रूपी गुणविकारों से मुक्ति पाकर अपने आत्मस्वरूप को अन्तःकरण से भिन्न सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप में देख लेता है यानि विशुद्ध बुद्धि में अनुभव करता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि सृष्टि के समस्त सूक्ष्म तथा स्थूल पदार्थों का कर्ता केवल माया के गुण हैं और वह अपने को गुणातीत स्थिति में पाकर परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है और तभी वह सर्वाधार तथा सर्वव्यापक परमात्मा के साथ एकत्व प्राप्त कर उसी स्वरूप में अभिन्न होकर रमण करता है। अतः सिद्धयोगी सद्गुरु तथा परमात्मा एक ही आत्मतत्व के प्रतीक हैं। किसी एक स्वरूप की भक्ति स्वतः दोनों स्वरूप की भक्ति होती है। द्वैतभाव मिथ्या है, केवल शब्दों का व्यभिचार है। हमारे त्रिकालसत्य वेदशास्त्र भी यही आदेश देते हैं कि –

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मसु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।
यं यं लोकं मनसा संविभाति।
कामयति यांश्च कामान्।।
तं तं लोकं जयति तांश्च कामान्।
तस्मात् आत्मज्ञं अर्चयेत् भूतिकामः।।
सः वेद एतत् परमं ब्रह्म धाम।
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।

उपासते पुरुषं ये हि अकामाः।
ते शुक्रं एतत् अतिवर्तन्ति धीराः।।

(मुण्डक उ. 3/2

अर्थात् मोक्ष के जिज्ञासु को उस पूर्णआनन्द स्वरूप तथा ज्ञान तथा विज्ञान की प्रतिमूर्तिस्वरू सद्‌गुरुदेव की अनन्य एवं अव्यभिचारिणि भक्ति करनी चाहिए जो उस परमात्मा का ही सगुणस्वरूप जिसकी शक्ति पाकर सभी प्राणी अपने–अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं तथा जिसकी मायाशक्ति से प्रक हुआ जगत समस्त चित्तों में देदिप्यमान है। वह आत्मज्ञ महापुरुष मन से जिस–जिस लोक का संकल करता है अथवा जिस–जिस कामना का संकल्प करता है, वह इच्छामात्र से उस लोक को प्राप्त क लेता है और उसकी सभी कामनायें संकल्पमात्र से पूर्ण होती हैं। अतः जिज्ञासुओं को उसी की अर्चन करनी चाहिए, क्योंकि जो भक्त उस ब्रह्मज्ञाता पुरुष की निष्कामभाव से पूजा तथा अर्चना करते हैं व माया के बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। संसार के मनुष्यों का कल्याण करने व लिए ही परमात्मा स्वयं देहधारी सद्‌गुरुदेव के रूप में पृथ्वी पर विचरण करते हैं। जिज्ञासुओं के लि यही परम सत्य है। भक्ति योग का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेताः ते मे युक्ततमाः मताः।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्तः उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।
मयि मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

अर्थात् जो जीव जिस–जिस भावना से मेरी भक्ति करता है, मैं भी अपने सर्वज्ञ तथ सर्वशक्तिमान मन से उसकी भक्ति करता हूँ यानि उसकी भावना को पुष्ट तथा पूर्ण करता जाता हूँ इसी उपाय से जीव मेरे मार्ग पर अग्रसर होकर मेरे निकट आते जाते हैं। जो भक्त अपने मन को नित्य अनन्यभाव से मेरे परमात्मस्वरूप के चिन्तन तथा ध्यान में लगाते हैं तथा निष्कपट प्रेम से परिपूर्ण होक चित्त को मेरे स्वरूप में लय तथा समाहित करते जाते हैं, वही भक्तियोग के अधिकारी होते हैं शरीरधारी होने के नाते कर्म तो करना ही पड़ता है किन्तु जो कर्मफल को मेरे समर्पण करते हुए मेरी प्राप्ति को ही एकमात्र लक्ष्य मानकर अनन्ययोग यानि अव्यभिचारिणी प्रेमभक्ति से परमात्मा की उपासना करते हैं, उन भक्तों को इस माया के भवसागर से पार करने के लिए मैं परमात्मा शीघ्र ही उनके चित्त में प्रकट होकर अपने ज्योतिमय स्वरूप की ज्ञानज्योति दे देते हैं। जब साधक अनन्यभाव से

भक्ति करता है तब हृदय में गुप्त गुणातीत परमात्मा को भी प्रकट होना पड़ता है। इसके दो प्रमुख रहस्य है जोकि स्वयं परमात्मा के मुख से प्रकट हो गये हैं। प्रथम रहस्य है –

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं हि एतदुत्तमम्।।

तथा द्वितीय रहस्य है कि –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न च प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्तया ते मयि तेषु चाप्यहम्।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते।।

(गीता)

अर्थात् जब पूर्ण वैराग्य से सम्पन्न होकर लोक तथा धर्म के पापपुण्यात्मक सभी व्यवहारों का चिन्तन त्यागकर जब भक्त एकमात्र परमात्मा से रिश्ता बनाकर स्वरूपशून्यता में अपनी बुद्धि को परमात्मा के विज्ञानमय स्वरूप में प्रवेश करा देता है तब अहंभाव के लुप्त होने से परमात्मा में एकात्मता आ जाती है। इस प्रकार स्वतः ही परमात्मा की ज्ञानज्योति अन्तःकरण को प्रकाशित कर देती है। अन्यथा परमात्मा का न किसी से द्वेष है और न प्रेम है, वह तो सभी प्राणियों में समभाव में स्थित है। इसका कारण भी वेदों में स्पष्ट है कि –

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिः विविधैव श्रयते स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया चे।।

(श्वेता. उप. 6/8)

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम् यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।

(श्वेता. उप. 3/7)

अर्थात् परमात्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृति से परे यानि उत्कृष्ट तथा सृष्टिकर्ता कार्यब्रह्म से भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि यह दोनों शक्तियाँ उसके सर्वव्यापी स्वरूप से प्रकट हुई हैं। किन्तु उसका न कोई कार्य है और न कर्तव्य है, न कोई उसके समान है और न उससे अधिकतर तथापि वह प्रत्येक प्राणी में उसके शरीर के अनुकूल स्वरूप में विद्यमान है, समस्त विश्व का एकमात्र भरण–पोषण तथा धारण करने वाला है, क्योंकि उसके सच्चिदानन्द स्वरूप में ज्ञान, शक्ति तथा व्यापकता स्वभाविकी क्षमता है। अतः उसके इस आश्चर्यमय स्वरूप को जानकर जीव कृतकृत्य होकर अमृतत्व पा जाते हैं किन्तु अनादिकाल से मायानिद्रा में सुप्त जीव के चित्त में ऐसी अनन्या भक्ति का उदय एक दुर्लभ प्राप्ति है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि –

जन्मान्तरसहस्त्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः।
जनानां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते।।

अर्थात् सहस्त्रों जन्मों में निरन्तर कठोर तप, वेदान्तविज्ञान का स्वाध्याय तथा योग समाधियों

का अभ्यास करते–करते जब अन्तःकरण में संचित पापकर्म क्षीण हो जाते हैं तभी शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मज्ञान की जिज्ञासा तथा भक्ति का उदय होता है। इस भक्ति के उदय होने में कर्मयोग का तथा क्रियायोग का विशेष योगदान है। इसके दो विशेष कारण भी हैं। प्रथम कारण तो यह कि जिस माया ने जीवों की उत्पत्ति की है वह माया परमात्मा से प्रकट हुई है अतः इस संसार का अस्तित्व परमात्मा पर निर्भर करता है, इसलिए जीवन का उद्देश्य अपने कर्मों से उसकी प्रसन्नता ही होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने इस ओर संकेत भी किया है कि –

पुरुषः सः परः पार्थ भक्तया लभ्यः तु अनन्यया।
यस्यान्तस्यानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

(गीता 8/22)

यतः प्रवृत्ति भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणाा तमभ्यच्र्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता 18/46)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

(गीता 8/14)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।

(गीता 3/19)

अर्थात् संसार के समस्त प्राणी जिसके सर्वव्यापक स्वरूप में स्थित हैं तथा जिसके चैतन्यस्वरूप से यह संसार प्रकट हुआ है, वह परम पुरुष परमात्मा केवल अनन्यभक्ति से जाना जा सकता है। जिसके दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप से समस्त चराचर जगत की उत्पत्ति हुई उसी की अपने निष्काम कर्मों से अर्चना करके आध्यात्मिक सिद्धि सम्भव है, अन्य कोई उपाय नहीं। अतः नित्य निरन्तर अनन्य भाव से जो मनुष्य उस परमात्मा का समाहित चित्त से स्मरण करते हैं, वही युक्त योगी परमात्मभाव को प्राप्त करते हैं। अतएव आत्मसाक्षात्कार के लिए कर्मयोग की साधना अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग से तात्पर्य है कि फलासक्ति त्याग कर लोकहित में आसक्तिरहित मन से अपने कर्तव्यों तथा दायित्वों का निर्वाह करते हुए चित्त को परमात्मा के स्वरूप में समाहित करना है।

कर्म तो प्रकृति के गुणों के द्वारा किये जाते हैं उनमें जीव की कर्तापन की भावना अज्ञान का द्योतक है। कर्म के साथ जीवात्मा की जो भावना रहती है कर्म का फल उस भावना का अनुसरण करता है। इसीलिए अज्ञानी के लिए कर्म बन्धन है तथा ज्ञानी के लिए परमात्मा की सेवा एवं पूजा है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का आदेश तथा संदेश है कि –

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योगः उच्यते।।
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।
कर्मजं बुद्धियुक्ताः हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्ति अनामयम्।।

अर्थात् हे अर्जुन! कर्मफल में जो आसक्ति है उसी से कर्मबन्धन तैयार होता है, क्योंकि आसक्ति वासना का रूप है और वासना चित्त में संस्कार के रूप में संचित हो जाती है किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखते हुए जो कर्म किया जाता है उसकी सिद्धि तथा असिद्धि का चित्त पर प्रभाव नहीं पड़ता इसी को योग कहा जाता है। अतः योग में स्थित होकर कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है। इस बुद्धिगत योग से पाप तथा पुण्य के परिचायक कर्मों से मुक्ति मिल जाती है और सुख–दुःख के रूप में कर्म का भुगतान नहीं करना पड़ता। यही कर्मयोग कहलाता है जिसके फलस्वरूप कर्मफल के भुगतान सम्बन्धी बन्धन से मुक्त होकर ज्ञानी मनुष्य जन्म–मृत्यु के आवागमन से मुक्त होकर परमात्मा के अक्षय आनन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु कर्मयोग की सिद्धि के लिए क्रियायोग की आवश्यकता है, अन्यथा आध्यात्मिक मार्ग के अन्तराय तथा समाधि की अयोग्यता इस बुद्धियोग तथा कर्मयोग को सफल नहीं होने देंगे।

यह 'क्रियायोग' क्या है, इसकी परिभाषा महर्षि पतंजलि ने दिया है कि –

तपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।
समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च।।

(योगदर्शन 2/1,2)

संसार का सत्य यही है कि प्रकृति के रूप में परमात्मा की माया से यह पंचभूतादि जड़ सृष्टि प्रकट हुई जैसे कि हमारे चेतन शरीर से अचेतन बाल प्रकट होते हैं। इस जड़ स्थूल सृष्टि के साथ पंच महाभूतों से इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, इन्द्रियों के विषय तथा पंचक्लेशादि सूक्ष्म सृष्टि प्रकट हुई। यह स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि कूटस्थ तथा सर्वसाक्षी के रूप में परमात्मा के प्रवेश से चेतनमयी बन गयी, जैसे लोहा विद्युत से चुम्बकीय शक्ति पाकर शक्तिवान हो जाता है जिससे सभी विद्युतयुक्त मशीनें अपना – अपना कार्य करने लगती हैं। इस प्रकार हमारे चेतन शरीर कार्यरत तो हो जाते हैं किन्तु चित्त में विद्यमान माया की आवरण शक्ति आत्मा को अपना आलम्बन बनाकर उसे जीवात्मा का भी रूप दे देती है। इस जीवात्मा के माध्यम से माया के प्राणादि अनन्त भाव इस आश्चर्यमय जड़ तथा चेतन जगत के रूप में उदय–अस्त होते रहते हैं। इन रहस्यों को जानने के लिए चित्त में व्याप्त पंचक्लेशादि (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश) गुणविकारों को क्षीण करना तथा वैराग्य को पुष्ट करते हुए उसमें समाधिपरिणाम को लाना परमावश्यक है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए क्रियायोग परमावश्यक है जिसके तीन अंग हैं – 1. तप, 2. स्वाध्याय तथा 3. ईश्वरप्राणिधान। इन तीनों अत्यन्त महत्वपूर्ण अंगों पर हम संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। क्रियायोग का प्रथम अंग तप है। तप से स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर दोनों

को बल मिलता है। तप की परिभाषा में कहा गया है कि –

द्वन्दसहनं तप:।। (योगदर्शन)

मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तप:।।
श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरै:।
अफलकांक्षिभि: युक्तै: सात्विकं परिचक्षते।।

(गीता /7/17)

अर्थात् शरीर, मन तथा बुद्धि के द्वारा द्वन्दों को सहन करने के कर्म को तप कहते हैं। यह द्वन्द दो प्रकार के हैं। एक तो माया की विक्षेप शक्ति द्वारा संचालित कारण–कार्य रूपी गुणात्मक द्वन्द हैं तथा दूसरे क्लेशादि गुणविकारों द्वारा संचालित मानसिक द्वन्द हैं। इनके प्रभावों को समत्वभाव से सहन करना तपस्या है। इस तपस्या से शक्ति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता की वृद्धि का अभ्यास भी उत्कृष्ट तप है। यह तप सात्विक होना चाहिए जिसमें परमात्मा के प्रति श्रद्धाभक्ति के साथ केवल परमात्मज्ञान की जिज्ञासा ही होना चाहिए तथा अंशमात्र भी तपस्या के फल के रूप में किसी भी प्रकार की भोगवासना नहीं होना चाहिए। तप के साधन के रूप में परमात्मा ने हमें शरीर, वाणी तथा मन की सुविधायें प्रदान की हैं। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने हमें गीता में यह संदेश दिया है कि –

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यं अहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।
मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।
भावसंशुद्धि इत्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

अर्थात् कर्म करने में शरीर को सर्दी–गर्मी, घातप्रतिघात आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है, मन को सुख–दु:ख तथा अनुकूलता–प्रतिकूलता आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है तथा बुद्धि को शुभ–अशुभ, पाप–पुण्य तथा धर्म–अधर्म आदि द्वन्दों का सामना करना पड़ता है फिर भी सभी परिस्थितियों में समत्वभाव से प्रसन्नतापूर्वक कर्म कर्तव्यबुद्धि से करते जाना तप है। इसमें देवता, ब्राह्मण, गुरुदेव तथा विद्वानों की सेवा तथा पूजा करना, शौच, सौम्यता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसादि नियमों का पालन शारीरिक तप है, अन्य जीवों को कष्ट न देने वाले वाक्य, सत्य तथा हितकारी भाषा का प्रयोग तथा स्वाध्याय वाणी का तप है। सदैव मन में प्रसन्नता बनाये रखना मौनवृत का पालन, इन्द्रियों पर विषयों के प्रति रागद्वेष पर नियन्त्रण तथा चित्तशुद्धि के लिए प्रयासरत रहना मानसिक तप है। इन सभी तपों का एकमात्र लक्ष्य अन्त:करण की शुद्धि है, तभी यह कर्मयोग है।

चित्त को सांसारिक इच्छाओं से मुक्त कर आध्यात्मिक चिन्तन में एकाग्र करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय का परमात्मदर्शन में विशेष योगदान है, क्योंकि शास्त्र का कथन है –

स्वाध्यायात् योगमासीत् योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय का प्रमुख अंग मन्त्रजप है, क्योंकि जप करने से मन मंत्र में लय होता है, लयता से गुरुशक्ति तथा देवशक्ति चित्त का शुद्धिकरण करती है, शुद्धि से ध्याय–समाधि की योग्यता बढ़ती है और चित्त का योग में प्रवेश होता है। योग से स्वाध्याय पुष्ट होता है। इस प्रकार जब स्वाध्याय तथा योग के संयोग से अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है, माया का मलावरण क्षीण होता जाता है तब स्वतः ही रजोगुण तथा तमोगुण पर सतोगुण का आधिपत्य हो जाता है और सतोगुण के प्रकाश में परमात्मा का स्वरूप चित्त में प्रकाशित होने लगता है। क्रियायोग का तीसरा महत्वपूर्ण अंग है 'ईश्वरप्रणिधान' जिसका अर्थ है कि ईश्वर की शरण में आत्मसमर्पण करना। जब कोई अपराधी राजा की शरणागति पा जाता है तब राजा के सैनिक उसे बन्दीग्रह में डालते हैं। ईश्वर राजा है तो माया उसकी सेना, अतः ईश्वर की शरणागति में आये साधक के मायिक बन्धन स्वतः टूट जाते हैं। वेदवाणी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि –

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारं अनेकरूपम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेता. उप. 5/13)

अर्थात् ईश्वर इस संसार का सृष्टा, भर्ता तथा नियन्ता है जोकि इस मायावी रचना के मध्य अनेक रूपों में अनन्त तथा अनादि है तथा विस्तार वाला होकर सर्वव्याप्त तथा सर्वाधार है। अतः उसकी ही कृपा से जो उसके इस दिव्य स्वरूप को जान लेता है वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर अमर हो जाता है। वह ईश्वर कहाँ मिलेगा और उसका ज्ञान कैसे होगा? इस पर वेदवाणी का कथन है –

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनः यद्वाचो हि वाचं प्राणस्य प्राणः।
चक्षुसश्च चक्षु अतिमुच्य धीराः प्रेत्य अस्मात् लोकात् अमृताः भवन्ति।।

(केन उप. 1/2)

सम्प्राप्य एनं ऋषियो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।।

(मुण्डक उप. 3/2/5)

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामाः ये अस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्यो अमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते।।

(कठ. उप. 2/3/14)

अस्ति इत्येव उपलब्धव्यः तत्वभावेन चोभयोः।
अस्ति इत्येव उपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति।।

(कठ. उप. 2/3/13)

अणोरणीयान् महतोमहियान् आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।

तमक्रतुं पश्यति बीतशोकः धातुः प्रसादात् महिमानमीशम्।।

(श्वेता. उप. 3/20)

अर्थात् प्रत्येक शरीर में ईश्वर वह शक्ति है जिसको हमारे श्रोत्र सुन नहीं सकते अपितु जिससे श्रोत्र सुनने की शक्ति पाते हैं, जिसका हमारा मन मनन नहीं कर सकता अपितु जिसकी शक्ति पाकर मन मनन करता है, जिसके विषय में हमारी वाणी कुछ भी बोल नहीं सकती अपितु जिसकी शक्ति पाकर वाणी बोलती है, जो हमारे प्राणों का भी प्राण है तथा हमारे चक्षुओं का भी चक्षु। जो हमारी बुद्धि की भी बुद्धि है उसको जानने के लिए इन सबके व्यापारों को रोक कर संकल्परहित निर्मल चित्त में उसके ज्योतिर्मय स्वरूप की अनुभूति की जा सकती है, क्योंकि वह ईश्वर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम् तथा महान से भी महानतम है और प्रत्येक प्राणी की बुद्धिरूपी गुफा में गुप्त है। जब हृदय में आश्रित सभी कामनारूपी संकल्पों का नाश हो जाता है तब शोकरहित बुद्धि उसी ईश्वर की कृपा से उसके निर्विकल्प महिमामय स्वरूप का अनुभव करती है। उसकी सत्ता की अनुभूति उन ऋषियों को होती है जो ज्ञानविज्ञान से तृप्त हैं, जिनका चित्त गुणातीत स्थिति में स्थित है, जो युक्तयोगी होकर आत्मस्वरूप हो चुके हैं, तत्वभाव में स्थित तत्वज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और जिनका विशुद्ध अन्तःकरण ईश्वर की कृपा से ईश्वर के सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप से प्रकाशित है। जब तक चित्त में मनोवृत्तियों द्वारा रचित दृश्यजगत है तब तक तो चित्तवृत्तियों का ही ज्ञान रहेगा, परमात्मा का स्वरूप और उसकी महिमा का ज्ञान प्रकट हो ही नहीं सकता। इसका महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट कारण दिया है कि –

चितेः अप्रतिसंक्रमायाः तदाकारोपत्तौस्वबुद्धिसंवेदनम्।।

(योगदर्शन)

अर्थात् आत्मा निर्गुण तथा निष्क्रिय है तथापि बुद्धि के साथ तदाकारता के कारण बुद्धिसम्वेदना से प्रभावित रहती है।

निर्वाणाष्टक

जगदीश राए बंसल

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं,
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं,
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्।।

हे ईश्वरों के ईश्वर मोक्ष स्वरूप परमेश्वर मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! आप सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक हैं तथा वेदों में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप हैं। आप सदा निज स्वरूप में स्थित रहते हैं और सत्व रज तम इन तीनों गुणों से रहित, कल्पना से अतीत एवं इच्छा रहित हैं। चिदाकाश स्वरूप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करने वाले हे दिगम्बर प्रभो! मैं आपको भजता हूँ।

निराकारमोंकार मूलं तुरीयं,
गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशम्।
करालं महाकाल कालं कृपालुं,
गुणागार संसार पारंनतोऽहम्।।

हे निराकार स्वरूप, ओंकार के मूल, नित्य अपने स्वरूप में (समाधि में) स्थित रहने वाले, वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों द्वारा जानने में न आने वाले, कैलाश पति, रौद्ररूप, काल के भी महाकाल परम कृपालु, गुणों की खान एवं त्रिगुणमय संसार से सर्वथा निर्लिप्त हे प्रभो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं,
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरम्।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारुगंगा,
लसद्भाल बालेन्दु कंठे भुजंगा।।

जो हिमालय के समान अत्यंत गौरवर्ण और गंभीर है तथा जिनके शरीर में करोड़ों कामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके मस्तक पर कलकलाती गंगा विराजमान है, मस्तक पर बाल चन्द्रमा और गले में सर्पशोभायमान हैं।

चलत्कुण्डलं सु – भ्रू – नेत्रं विशालं,

प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालुम्।
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं,
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।

जिनके कानों पर हिलते हुए कुण्डल शोभा दे रहे हैं, जिनकी भौंहें और नेत्र सुन्दर तथा विशाल हैं। जो प्रसन्न मुखमुद्रा वाले, नील कंठ वाले और परम दयालु हैं, जो व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए और मुण्डमाला धारण किये हुए हैं ऐसे प्यारे तथा सबके स्वामी भगवान शंकर को मैं भजता हूँ।

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं,
अखण्डं अजं भानुकोटि प्रकाशम्।
त्रयः शूलनिर्मूलनं शूलपाणिं,
भजेऽहं भवानी पतिं भावगम्यम्।।

रुद्ररूप, परम श्रेष्ठ, परम तेजस्वी, सकल ब्रह्माण्ड में शासन करने वाले, परब्रह्म परमेश्वर, सदा एक रस रहने वाले, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले, भक्तों के तीन प्रकार के दुःखों के निवारणार्थ हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले प्रेम से प्राप्त होने योग्य भवानीपति भगवान सदाशिव को मैं भजता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी,
सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी।
चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी,
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।।

कलाओं से परे, परम कल्याणकारी, सृष्टि का संहार करने वाले, सज्जनों को सदैव अक्षय आनन्द देने वाले, त्रिपुरासुर के शत्रु, सच्चिदानन्दघन, मोह का नाश करने वाले, कामदेव के वैरी हे सदाशिव आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं,
भजन्तीह लोके परे वा नराणाम्।
न तावत्सुखं शान्ति सन्ताप नाशं,
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम्।।

इस संसार में जब तक मनुष्य आप उमानाथ भगवान सदाशिव के पावन चरणारविन्दों की सेवा नहीं करते तब तक उनको सुख शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती और उनका सन्ताप दूर नहीं हो सकता।

हे प्राणीमात्र के परम आश्रय प्रभो! मुझ पर प्रसन्न हो जाइये।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां,
नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यम्।
जराजन्म दु:खौघ्र तातप्यमानं,
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो।।

हे प्रभो! मैं योग, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता किन्तु हे सदाशिव! मैं तो सदा सर्वदा आपको ही प्रणाम करता हूँ। बुढ़ापा, जन्म तथा अन्यान्य सांसारिक दु:खों से तपते हुए मुझ शरणागत की हे शम्भो! आप रक्षा कीजिए।

सूचना

सभी गुरु भक्तों को ज्ञात ही है कि श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम में गुफा के सामने तथा ऊपर के भाग में निर्माण कार्य चल रहा है। सभी गुरु भक्तों का सहयोग सराहनीय है। प्रोजेक्ट लम्बा है अत: गुरुभक्तों से निवेदन है कि आर्थिक सहयोग करें।

बैंक खाता नं. आदि दिया जा रहा है आप सीधे बैंक में जमा कर सकते हैं।

नाम खाता – दासलाल शर्मा व अन्य दो

A/c No. : 0371101026843
I.F.S.C. Code : CNRB0000371

कैनरा बैंक, एत्मादपुर, आगरा

ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह न विद्यते

गीता ज्ञान एवं विज्ञान से युक्त समस्त मानव जाति को पवित्र वाली है। योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याणार्थ उपदेश दिया है। मनुष्य के समस्याओं का समाधान गीता के स्वाध्याय से अवश्य हो जाता है। इसलिए गीता का स्वाध्याय नित्य किया जाए। सद्गुरुदेव भगवान सदैव इसका परायण साधकों को स्वयं करवाते थे। स्वाध्याय का एक परिणाम है। योग दर्शन में एक सूत्र है –" **स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग:** "। अर्थात् स्वाध्याय (नाम जप) से अथवा अध्ययन रूप स्वाध्याय से व्यक्ति अपने ईष्ट का दर्शन प्राप्त कर लेता है। स्वाध्याय का इतना बड़ा परिणाम है। स्वाध्याय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। अर्जुन पूतात्मा है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगं संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

अर्थात् ज्ञान के समान पवित्र करने वाला इस संसार में कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान निरन्तर अपने अभ्यास से शुद्ध अन्त:करण से कर्म योग के द्वारा मनुष्य अपने आप ही आत्मा में ही प्राप्त कर लेता है। भगवान का आशीर्वादात्मक उपदेश है। यह श्रद्धालु व्यक्ति के हृदय में जिज्ञासा भी उत्पन्न करता है। जिज्ञासु व्यक्ति सकाम कर्मों का उल्लंघन कर जाता है। गीता में ही भगवान ने कहा है कि " **जिज्ञासुरषि योगस्य शक ब्रह्माति वर्त ते** "। ज्ञान को किस तरह पहचाना जाए कि हम इतना स्वाध्याय कर लिये हैं कि ज्ञान हो गया है। अथवा अभी और स्वाध्याय की आवश्यकता है ज्ञान प्राप्त करने के लिए। इसका समाधान योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं करते हुए कहा है कि –

श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:।
ज्ञान लब्ध्वा परां शान्तिभचिरेणधि गच्छति।।

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धालु, इन्द्रियों पर विजय, इसका हमारी बाह्म इन्द्रियाँ जैसे – ऑख, नाक, कान, स्पर्श आदि जो बाह्य दृश्यों को देख रही हैं। वे अन्तर्मुखी होकर अन्दर के दिव्य दृश्यों को देखें। जो साधन में लगे उनको ज्ञान की प्राप्ति होती है। वह ज्ञान को प्राप्त शान्त हो जाता है। तात्पर्य उसकी कुछ भी देना, लेना इस संसार में नही रह जाता है। ऐसा व्यक्ति सांसारिक सुख को भोगता हुआ भी उससे (संसार सुख) प्रभावित नहीं होता है। किन्तु इस कलिकाल में ऐसा सब के साथ हो पाना सम्भव है। उत्तर होगा– हाँ। लेकिन ऐसा ज्ञान स्वाध्यायी व्यक्ति के साथ ही हो सकता है। इस कलिकाल में भी ऐसे व्यक्ति हैं जो अल्प साधनों या

प्राकृतिक साधनों में ही सन्तुष्ट हैं। क्योंकि वे किसी भी कर्म को कर्त्ताभाव से ही करते हैं। कर्मों का कर्तृत्व अपनी तरफ नहीं आने देते कि यह कार्य मैंने किया। वे सम्पूर्ण कर्म को ईश्वर का मानकर तथा वही करा रहा है। ऐसा मानकर करते रहते हैं। श्रद्धा की संगति से जो सुख होता है अखण्ड शान्ति से ज्ञान उसे स्वतः तलाश लेता है। जब ज्ञान हृदय में भलीभाँति स्वतः प्रविष्ट हो जाता है। तब शान्ति का अंकुर भी फूटता है। आत्मबोध का स्वतः विस्तार हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को चारों ओर शान्ति ही शान्ति दिखायी देती है।

हम इस संसार में सब कुछ यथार्थ अर्थात् सत्य देखते हैं। किन्तु जिसे देखते हैं वह भौतिक पदार्थ नाशवान है। यहाँ तक कि प्रकृति और इसमें विद्यमान सभी वस्तुएँ नाशवान हैं। इस पवित्र ज्ञान को भी अज्ञानता के अभाव में शायद समझने से वंचित हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप– इस दृश्य जगत में व्यक्ति मरण धर्मा प्राणी है। वह मरे हुए अपने स्वजनों को देखता है। लेकिन स्वयं मरने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नहीं है। कदाचित रोग में भी अन्तिम क्षण तक औषधि का सेवन करता है। जिससे शरीर की रक्षा किसी प्रकार हो। लेकिन एक काल के समाप्त होने पर औषधि भी निष्फल हो जाती है। यह औषधि भी मनुष्य के बुद्धि की युक्ति है। जो सत्य होते हुए भी एक समय पर असत्य हो जाती है। यही अज्ञानता लिए हुए व्यक्ति इस भौतिक संसार में घूमता रहता है। ज्ञान क्या कि शरीर मरण धर्मा है आत्मा तो अमर है। यही पवित्र ज्ञान है। युद्ध के मैदान में अर्जुन भी अज्ञानता (मोह) के कारण क्लैव्यता को प्राप्त करता हुआ दिखाई देता है। किन्तु जिसके रक्षक नारायण हैं, वह कभी भी कायर नहीं हो सकता है। संशयी हो सकता है। इसी संशय रूपी सर्प से आज हम सब कलियुगी ग्रसित हैं। यह संशय वस्तुतः क्या है ? जहाँ तक हमारी समझ में आता है कि संशय किसी कार्य के करने के शुभ एवं अशुभ परिणाम दायिनी के फल का विचार है। व्यक्ति फल की अभिलाषा रखते हुए किसी कार्य को करता है। यही वह संशयी बन जाता है। जबकि यह सत्य है कि किसी कार्य का परिणाम अवश्य होगा। जैसे – बिजली के रहने पर जब स्विच आन करते है तो बल्ब जल जाता हैं। चारों ओर प्रकाश हो जाता है। व्यक्ति किसी भी कार्य के परिणाम को पहले ही जानना चाहता है। जबकि कर्म को अभी शुरू भी नहीं किया। उसे संशय रूपी अज्ञानता का सर्प ग्रस लेता है। इसलिए इस अज्ञानता को स्वाध्याय से नष्ट करना धर्म है। भगवान ने बड़े स्पष्ट रूप में गीता में कहा है कि –

योग सन्नयस्त कर्माणं ज्ञान सञ्छिन्न संशयम्।

आत्मवन्तं न कर्माणि निवध्नन्ति धनञ्जय ।।

अर्थात् हे धनञ्जय कर्मयोग विधि से समस्त कर्मो को परमात्मा में अर्पण कर देना चाहिए। जिससे विवेक द्वारा सब संशय नष्ट हो जाते हैं। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति शुद्ध अन्तःकरण वाला किसी कर्म से नहीं बँधता है। जब ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी नहीं हिलता तो हमारा कौन से इस संसार में कर्म है।

व्यक्ति को किसी भी प्रकार की शंका (अज्ञानता) नहीं रखनी चाहिए। जिससे ज्ञान की पवित्रता सिद्ध हो। सूर्य का विम्ब आकाश में छोटा दिखता है, लेकिन उसका प्रकाश सम्पूर्ण पृथ्वी के तिमिर का नाश कर देता है। उसी प्रकार ज्ञान अज्ञानता रूपी समस्त गाँठ खोल देता है। हमारे संतों ने तो ज्ञान को सबसे श्रेष्ठ माना है। कबीर ने एक

झल उठी झोली जली खपरा फूटिम फूटि।

योगी था सो रमि गया आसनि रही विभूति।।

अर्थात् ज्ञान रूपी अग्नि के प्रज्वलित होने पर उसमें व्यक्ति के सारे संचित रूपी झोली जल जाते हैं। क्रियमाण रूपी भिक्षापात्र भी टूट–फूट जाता है। एक योगी पर किसी का भी प्रभाव नहीं रहता है। उसके भीतर जो तत्त्व साधना कर रहा था। वह अपने ब्रह्मस्वरूप में मिल जाता है। उसके आसन पर भष्म मात्र रह जाता है। तात्पर्य कि साधक अपने पुराने रूप में रहा ही नहीं उसका अवशेष मात्र प्रतीकरूप में रह जाता है।

कबीर ने अपने सवद में गुरु के उपदेश रूपी ज्ञान को अमल में लाने वाले ज्ञानी साधक के बारे में कहा –

सरि मारे ते सदा सुखारे अनमारे ते दूषा।

विन नैनन के सब जग देखै लोचन अछते अंधा।

कहै कबीर कछु समुझि परी है यहु जग देखा धंधा।

कबीर का कथन है कि जो सद्‌गुरु के उपदेश रूपी बाण से सेवित हैं वे सुख का अनुभव करते हैं। दूसरे जो उपदेश (ज्ञान) से वञ्चित हैं वे दुःखी रहते हैं। जो बाहरी नेत्रों से रहित हैं अर्थात् विषयों से विरक्त हैं। वे तत्त्व ज्ञान को ज्ञानते हैं। लेकिन जो विषयासक्त हैं। उन के पास आँख रहते हुए भी अंधे हैं। वे तत्वज्ञान को नहीं जानते हैं।

अस्तु ज्ञान व्यक्ति के जीवन में अपरिहार्य है। यह ज्ञान, गुरु, शास्त्र एवं जहाँ से भी सम्भव हो प्राप्त करना चाहिए। जिससे विषयासक्ति छूटे। यही विषयासक्ति ही अज्ञानता की जड़ एवं अपवित्र है। इसलिए ज्ञान को सदैव ही पवित्र करने वाला माना गया है।

शुभ - सूचना

सभी गुरु भक्तों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि सद्‌गुरु देव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 107 वाँ प्राकट्य दिवस (जन्मोत्सव) श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम सहित हमारे सभी योग आश्रमों में 11 अक्टूबर 2016 , मंगलवार विजय दशमी को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। प्रति वर्ष की भाँति गुरुदेव के संस्मरण युक्त प्रवचन होंगे तथा गुरु भक्ति से ओत-प्रोत भजन-संगीत का कार्यक्रम होगा। 11 अक्टूबर को प्रातः 10 बजे गुरुदेव भगवान का पूजन होगा जो दिन भर चलता रहेगा। दोपहर 12 बजे से ब्रह्म भोज एवं भण्डारा आयोजित होगा। सभी गुरुभक्तों से आग्रह है कि श्री सिद्धगुफा संवाई धाम में आकर सत्संग का लाभ लें और पुण्य के भागी बनें।

निवेदक-

आचार्य डॉ. दासलाल

एवं

श्री सिद्धगुफा संवाई के सभी साधक

व भक्त गण

वाराणसी में योग शिविर 20 से 23 अक्टूबर 2016 तक

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सिद्धयोग आश्रम, टोड़रपुर, मोहन सराय वाराणसी में चतुर्थ वार्षिक योग शिविर का आयोजन 20 अक्टूबर से 23 अक्टूबर 2016 तक योगाचार्य ब्रह्मचारी डॉ. दासलाल जी महाराज के तत्वधान में आयोजित होगा। इसमें विभिन्न यौगिक क्रियाओं जिनमें ध्यान, योगासन षटकर्मो जैसे – नेति, धौति, न्यौलि, बस्ती , शंख प्रक्षालन आदि की विस्तृत व्याख्या और प्रदर्शन एवं योग पर सारगर्भित प्रवचन तथा योग अभ्यास में रत साधकों के योग मार्ग में आने वाली समस्याओं का समाधान भी किया जायेगा।

- **योग शिविर के सम्पर्क सूत्र** – मो. नं. : 09450708838 व 9453357801 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

समाचार

गोरखपुर में योग एवं आयुर्वेद सम्मेलन सम्पन्न
योग और आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक व सहयोगी है

आचार्य डॉ. दास लाल

श्री गोरक्षनाथ मन्दिर गोरक्षपीठ गोरखपुर परिसर में योग एवं आयुर्वेद सम्मेलन में श्री सिद्धगुफा संवाई से पधारे आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज ने सारगर्भित और प्रभावी व्याख्यान में " योग और आयुर्वेद " की महत्ता बताते हुए कहा कि योग व आयुर्वेद एक दूसरे के सहयोगी व पूरक हैं। कार्यक्रम की अध्यक्षता गोरक्षपीठाधीश्वर, एवं सांसद योगी आदित्यनाथ ने की।

ज्ञातव्य है कि युग पुरुष ब्रह्मलीन महंत दिग्विजय जी महाराज एवं राष्ट्रसंत ब्रह्मलीन महंत अवैधनाथ जी महाराज की स्मृति में उनकी पुण्य तिथि पर सप्त दिवसीय श्रद्धांजलि समारोह 13 सितम्बर से 20 सितम्बर 2016 तक श्री गोरक्ष नाथ मन्दिर में सम्पन्न हुआ। इसी क्रम में एक दिन 18 सितम्बर को ' आयुर्वेद एवं योग ' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ। इसमें भारत सरकार के आयुष (स्वतंत्र प्रभार) राज्य मंत्री श्री श्रीपाद यसो नायक तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डॉ. चन्द्रभूषण झा आदि ने भी योग आयुर्वेद पर अपने विचार रखे। यह भी उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि योगीराज पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्वयं भी गोरक्षपीठ के कार्यक्रमों में स्वयं भी आये हैं और राष्ट्रीय संत योगी महंत अवैध नाथ जी महाराज भी संवाई आश्रम में पधार चुके हैं। दोनों में परस्पर बहुत स्नेह और आत्मीय भाव था।

संगोष्ठी में आचार्य डॉ. दासलाल जी ने आयुर्वेद के उद्‌भव और विकास की चर्चा करते हुए बताया कि यह दिव्य–दैविक ज्ञान है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में उल्लेख है कि सर्व प्रथम ब्रह्मा जी से अश्विनी कुमारों ने और उनसे इन्द्र ने प्राप्त किया। ऋषियों ने ध्यान में देखकर कि यह ज्ञान इन्द्र के पास है, ऐसा जाना और महर्षि भारद्वाज को यह ज्ञान प्राप्त करने हेतु भेजा। महर्षि भारद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद का अध्ययन किया और भूमण्डल पर आयुर्वेद का प्रसार किया।

आचार्य डॉ. दासलाल जी ने आयुर्वेद में स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों की चर्चा करते हुए कहा कि–

समदोषाः समाग्निश्च, समधातु मल क्रिया।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः, स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात् समदोष, सम अग्नि, समधातु, मल एवं सम क्रियाओं का होना आत्मा, मन और इन्द्रियों की प्रसन्नता, यह स्वस्थ मनुष्य के लक्षण हैं। आयुर्वेद का उद्देश्य मानव को पूर्णायु प्राप्त कराने के साथ–साथ आत्मा और मन की प्रसन्नता रूपी आनन्द प्राप्ति भी है।

" दोषधातु मल मूलं हि शरीरम् " पर चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि यहाँ धातु का अर्थ–

वात: पित कफ से है। उन्होंने स्पष्ट किया कि धातु शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है। वात, पित कफ को धातु कहते हैं और रक्त, मांस, मज्जा आदि को सप्त धातु कहा जाता है। धातु सम नही होने पर दोष हो जाता है धातु अर्थात् वात पित्त कफ साम्यावस्था– समतावस्था में रहना चाहिए अन्यथा विषम– अर्थात् न्यून या अधिकता होने पर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उन्होंने सरल शब्दों में समझाया कि जब ये समता अवस्था में होते हैं तो धातु कहलाते हैं और न्यून या अधिक होने पर दोष कहलाते हैं।

" सूर्य सोमात्मत्मक जगत " अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा तत्व दृष्टि से कार्य कर रहें हैं। आचार्य जी ने कहा कि शरीर पान्च भौतिक है। वायु और आकाश तत्व से वात, अग्नि से पित्त, जल से कफ, पृथ्वी तत्व से शरीर का हाड़–मांस बनता है।

योग एवं आयुर्वेद की क्रियाओं में समानता का उल्लेख करते हुए डॉ. दासलाल जी ने कहा कि योग में आसन एवं षट कर्मा का अभ्यास बताया गया है।

नेति, धौति, न्यौली, वस्ति, कपाल भाति तथा त्राटक ये षट कर्म हैं। इनके द्वारा शरीर व नाड़ियों के मल का शोधन होता है। यह घट (शरीर) शोधन की प्रक्रिया है। ध्यान–प्राणायाम के साधकों के लिए घट (शरीर) शोधन अत्यन्त आवश्यक है।

आयुर्वेद में भी त्रिदोष को साम्यावस्था में लाकर देह को सुदृढ व स्वस्थ बनाने के लिए पंचकर्म का विधान है। वमन, विरेचन, निरूह बस्ती, अनुवासन, शिरो विरेचन (नस्य) ये पंच कर्म हैं। इसके अतिरिक्त स्नेहन तथा स्वेदन आदि भी चिकित्सा के अन्तर्गत आते हैं। चिकित्सक को शरीर को पंचकर्म कराकर शुद्धि के उपरान्त औषधियों का प्रयोग कराने पर रोगी को प्रभावी और अभीष्ट लाभ मिलता है।

आचार्य दासलाल ने कहा कि महर्षि चरक रोगों से मुक्ति एवं मोक्ष के लिए अष्टांग योग के आलम्बन का उपदेश करते हैं। उन्होंने कहा कि योग का नियमित अभ्यास करने से मनुष्य नीरोग–स्वस्थ रह सकता है और यदि किसी कारण से शरीर रोगी हो जाये तो आयुर्वेद की सहायता से रोग को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। रजोगुण – तमोगुण को भी दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

वर्तमान संदर्भ में योग और आयुर्वेद की महत्ता को सभी स्वीकार कर रहे हैं। दोनों का लक्ष्य एक ही है और दोनों एक दूसरे के पूरक व सहयोगी हैं।

– समाचार प्रेषक – दिनेश चन्द शर्मा

योग मार्ग में विघ्न

योग मार्ग में नौ प्रकार के विघ्न हैं जिन्हें अन्तराय, विक्षेप या व्यवधान के नाम से जाना जाता है। ये विघ्न हैं – व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध भूमिकत्व, अनवस्थितत्व।

व्याधि– योग मार्ग में प्रथम अन्तराय व्याधि है। **धातुरसकरणवैष्मयम् व्याधि** अर्थात् धातु, रस, इन्द्रियों की विषमता का नाम ही व्याधि है। वात, पित्त, कफ को धातु कहते हैं क्योंकि ये शरीर को धारण करते हैं। वात, पित्त, कफ आदि में विषमता आए तो नाना प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार से रस, रक्त आदि सात धातुओं का ठीक से निर्माण होना चाहिए। यदि इसमें विषमता आती है तो इनमें रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार से इन्द्रियों की विषमता से भी रोग होते हैं। इन्द्रियों की विषमता का तात्पर्य है कि इनका ठीक प्रकार से कार्य न कर पाना। शरीर में वात, पित्त आदि धातुओं की समतावस्था प्राप्त करने के लिए योग मार्ग में आसन, बन्ध, मुद्राएँ तथा घट शुद्धि के लिए षट कर्म का विधान किया है। **'आसनेन रूजो हन्ति'** आसन करने से रोगों का नाश होता है। धातुओं की समतावस्था ही स्वास्थ्य है तथा इनका वैषम्य ही रोग है। **'शरीरम् व्याधि मन्दिरम्'** शरीर में नाना प्रकार के रोग पनपते रहते हैं। इनके निवारण के लिए ही आसन एवं प्राणायाम आदि का अभ्यास किया जाता है। स्वस्थ व्यक्ति के लक्षण आयुर्वेद में इस प्रकार बताए हैं –

समदोषः समाग्निश्च समं धातु मल क्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभीधीयते।।

जिसे वात, पित्तादि दोष समान हैं तथा जठराग्नि भी सम है। रस, रक्तादि भी समान मात्रा में बन रहे हैं। मलादि का विसर्जन ठीक हो रहा है तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न है उस व्यक्ति को 'स्वस्थ' कहा जाता है।

स्त्यान– 'अकर्मण्यता चित्तस्य' चित्त का अकर्मण्य हो जाना या कर्म में प्रवृति का अभाव ही स्त्यान कहलाता है।

संशय– योग मार्ग में मन्त्र या साधना प्रणाली के विषय में संशय रहना। यह साधना या मन्त्र ठीक है या नहीं ऐसा भाव बना रहना संशय कहलाता है। अथवा योग सिद्धान्तों के प्रति संशय रखना संशय नाम का विघ्न।

गीता में भगवान ने कहा है – **'अज्ञश्च अश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति'** जो अज्ञ है, अश्रद्धालु है तथा संशयात्मा है ऐसा व्यक्ति योग मार्ग से च्युत हो जाता है। इस लिए साधक को अनेक प्रकार के साहित्य का अध्ययन तथा सत्संग का त्याग करना चाहिए।

श्री प्रभुजी की नियमावली में लिखा रहता है कि योग साधक को योग के अतिरिक्त किसी प्रकार के सत्संग में नही जाना चाहिए। क्योंकि जो योग मार्ग के नये साधक हैं वे भ्रमित हो सकते हैं।

प्रमाद– समाधि के साधनों के प्रति लापरवाही बरतना प्रमाद कहलाता है। आज नहीं कल मैं अवश्य ही साधना में बैठूंगा ऐसा विचार करते हुए साधना में नहीं लगना प्रमाद कहलाता है।

आलस्य– चित्त की एवं शरीर के भारीपन से साधना में प्रवृत्त न होना आलस्य कहलाता है। कफ, पित्तादि के अधिक होने से साधना में मन नहीं लगता है। यही आलस्य नाम का अन्तराय है। साधक का आलस्य महान शत्रु है।

अविरति– विषयों से उपराम न होना या विषयों में आसक्त रहना। विषयों की तृष्णा बनी रहने से मन की एकाग्रता नहीं बनती है। बार बार मन विषयों की ओर चला जाता है। यह साधना में बहुत बड़ा विघ्न है। इसे ही वैराग्य का अभाव कहते हैं। वैराग्य का मतलब होता है कि इह लौकिक एवं पारलौकिक विषयों के प्रति आकर्षण का अभाव। इसलिए संसार के नश्वर पदार्थो से चित्त को हटाना वैराग्य कहलाता है। वैराग्य का अभाव ही अविरति है।

भ्रान्तिदर्शन– अर्थात् विपर्यय ज्ञान। **'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्'** – 1/8– किसी भी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न समझकर उसको विपरीत समझना विपर्यय ज्ञान है। इसे ही भ्रान्तिदर्शन कहते हैं। मृगमरीचिका के समान भ्रान्ति होना अर्थात् दूर से चमकते हुए रेत को जल समझ लेना भ्रान्तिदर्शन कहलाता है। योग साधना में भी कुछ साधकों के चित्त में रजोगुण के कारण भ्रान्तिदर्शन होता है किन्तु साधक उस अनुभव को सत्य समझ बैठता है।

भ्रान्ति दर्शन के विषय में गुरुदेव अपने एक शिष्य की सच्ची घटना को बताया करते थे। उनका एक शिष्य सदानन्द नाम का था जिसकी ध्यान स्थिति बहुत अच्छी थी। एक बार वह किसी भक्ति मार्गी महात्मा के सत्संग में चला गया जिसका बड़ा नाम था। उस साधक ने उन्हें अपने अनुभूतियाँ बतायी। उस भक्त ने कहा– तेरा अनुभव सत्य नहीं है। तुम ध्यान में बैठना बन्द करो और पाठ व स्वाध्याय में लगे रहो। उसकी इन बातों को सुन करके उसने ध्यान में बैठना बन्द कर दिया। जिसके फल स्वरूप मन की एकाग्रता समाप्त हो गयी। कुछ दिन बाद सदानन्द को वृदावन में घूमते हुए गुरुदेव ने देख लिया। उसने गुरुदेव को प्रणाम किया गुरुदेव ने ध्यान के विषय में पूँछा उसने कहा अब मेरा मन बिल्कुल एकाग्र नहीं होता है उसने कहा– मैंने अपनी अनुभूतियाँ एक महात्मा को बता दी थी। उसने कहा– ये सब तुमको भ्रान्ति दर्शन हो रहा है अब तुम ध्यान में बैठना छोड़ दो। उनकी बात मानकर मैंने ध्यान अभ्यास छोड़ दिया परिणाम स्वरूप मेरा ध्यान स्थिति समाप्त हो गयी है। गुरुदेव ने कहा– ध्यान का अभ्यास छोड़कर तुमने अच्छा नहीं किया। इस प्रकार से ध्यान के विषय में हर व्यक्ति को ज्ञान नहीं होता है। अतः गुरुदेव के अतिरिक्त अनुभूतियाँ किसी को नहीं बतानी चाहिए।

अलब्धभूमिकत्व– समाधि की भूमिकाओं को प्राप्त न करना। साधक अभ्यास तो करता रहता है। लेकिन उसको कोई स्थिति प्राप्त नहीं होती है। इसी का नाम अलब्धभूमिकत्व है।

अनवस्थितत्व– जो स्थिति प्राप्त हो गयी है उस पर स्थिर न रह पाना। सत्वगुण की कमी से एकाग्रता में कमी आ जाने से स्थिति में गिरावट आ जाती है। अर्थात् स्थिरता का अभाव हो जाता

है। इसे ही अनवस्थितत्व कहते हैं।

इन विक्षेपों के अतिरिक्त कुछ और भी विक्षेप हैं जो साधना के मार्ग में विघ्न डालते हैं। पतंजलिदेव जी ने इनके लिए एक सूत्र दिया है – ' **दु:खदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासां विक्षेपसहभुवः** ' आधिभौतिक, आदिदैविक, आध्यात्मिक तीन प्रकार के दुख साधक के मार्ग में विघ्न पहुँचाते हैं।

मन का क्षुब्ध या खिन्न रहना अथवा चित्त का प्रसन्न न रहना दौर्मनस्य कहलाता है। शरीर के अंगों का काँपना भी एक रोग है जो साधक के मन को एकाग्र नहीं होने देता है।

इसके साथ–साथ श्वास और प्रश्वास का सही प्रकार न चलना मन की एकाग्रता को भंग करता है। जैसे श्वास रोगी के श्वास के आवा–गमन में व्यतिक्रम हो जाना भी एकाग्रता को नष्ट करता है क्योंकि श्वास रोगी जल्दी–जल्दी श्वास लेता क्योंकि उसे घबराहट होती है जिससे एकाग्रता बन नहीं पाती। ये सब योग के मार्ग में विघ्न हैं। साधक को चाहिए कि वह इनको आसन, प्राणायाम, नेती, धोती आति क्रियाओं से शरीर को स्वस्थ बना ले तभी वह अपने मार्ग में सफलता पूर्वक आगे बढ़ेगा।

अभ्युदय– निःश्रेयस सिद्धि का साधन योग

एक साधक

धर्म की परिभाषा करते हुए शास्त्रों में कहा गया है।

' यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः '

अर्थात् जिस प्रकार से इस लोक में उन्नति तथा परलोक में कल्याण की प्रगति हो उसे धर्म कहते हैं। मानव–जीवन को सुखी व सफल बनाने के लिए धर्म को धारण किया जाता है। धर्म का प्रतिपादन शास्त्रों में विस्तार से पाया जाता है। धर्म दूसरे अर्थ में भी प्रयुक्त होता है उदाहरण के लिए उष्णता अग्नि का धर्म है। ऊपर धर्म की जिस प्रकार से परिभाषा दी गई है वह लक्षण योग–विद्या (धर्म) में पूर्ण रूप से लक्षित होता है। धर्म के अन्य अंग मनुष्य को आंशिक रूप से सुख दे सकते हैं। परन्तु आत्यन्तिक तथा एकान्तिक सुख योग के द्वारा ही सम्भव है। भगवान ने अपने मुखारबिन्द से गीता में आज्ञा कहा है।

' तं विद्यात् दुःख संयोग

वियोगं योग संज्ञितम्।

अर्थात दुःख के संयोग का अत्यन्त वियोग कराने वाले योग को जानना चाहिए।

हमें ऋषि–मनीषियों ने इसी योग–धर्म पर चलकर यह लौकिक एवं पारलौकिक सुख को पाया। आर्षकाल से चली आ रही यह सार्वभौम तथा शाश्वत धर्म 'योग–धर्म' है। संसार में प्रचलित अन्य धर्म व सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव इसी योग धर्म से हुआ है। मनुष्य–मात्र इस सार्वभौम धर्म को अपना कर यह लोक व परलोक में सुखी बन सकता है। भगवान पतंजलि का अष्टाङ्ग योग अभ्युदय–निश्रेयस के लिए उपादेय है। योग जिज्ञासु को इस ग्रन्थ का अवलोकन अवश्य करना चाहिए।

अष्टाङ्ग योग सर्व प्रथम भौतिक शरीर की महत्ता को स्वीकार कर इसे पूर्ण स्वस्थ बनाना सिखलाता है। आसन, वन्ध मुद्रायें व प्राणायाम द्वारा पूर्ण शारीरिक विकास होता है। शरीर को स्वस्थ रखने में प्राण का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त शारीरिक क्रियायें प्राण की ही सहायता से होती हैं। आसन एवं प्राणायाम से प्राणों पर निग्रह किया जाता है।

प्राण तत्व सारे विश्व में व्याप्त है। इस पर योगी का अधिकार हो जाने पर अनेकों अलौकिक कार्य कर सकते हैं। मेस्मेरिज्म हिप्नोटिजम इत्यादि सब प्राण तत्व पर ही आधारित हैं। अपने से बलिष्ठ प्राण वाले पर यह सम्मोहन इत्यादि काम नहीं कर सकते। योगाभ्यासी पर इन का कोई असर नहीं पड़ता क्योंकि उसका प्राण सम्मोहन करने वाले की अपेक्षा अधिक बलिष्ठ एवं तेजोमय होते हैं।

मन तथा प्राण योग साधना के दो मूल तत्व हैं। दोनों में से एक के वश में किए जाने पर दूसरा स्वतः ही वश में हो जाता है, **'यत्र मनो लीयते तत्र प्राणो लीयते '** का शास्त्रीय सिद्धान्त है।

शास्त्रों व महापुरुषों ने दुःख सुख का कारण मन को ही बतलाया है।

' मन एव मनुष्याणां

कारणं बन्ध-मोक्षयोः '

मन ही बन्धन और मुक्ति का कारण है।

' मनसा कल्पयते बन्धो '

मोक्षस्तेनैव कल्पयते '

मन से ही बनधन की कल्पना होती है, और उसी से मोक्ष की।

अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने भी गीता में कहा है–

' आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु

रात्मैव रिपुरात्मनः '

अर्थात मन ही अपना मित्र है, तथा मन ही अपना शत्रु है। जिसका मन अपने वश में है वह उसका मित्र है तथा जिसका मन वश में नहीं है वह उसका शत्रु है।

योग साधनों के द्वारा इस चंचल मन को धीरे–धीरे वश में किया जाता है। मानसिक विकास के साथ–साथ बौद्धिक उन्नति भी योग के द्वारा ही सम्भव है। यम–नियमों का पालन एवं मैत्री करुणा इत्यादि भावनाओं के द्वारा मानसिक शक्ति बढ़ती है। पूर्ण मानसिक बल के प्राप्त होने पर बौद्धिक बल का उदय होता है। बुद्धि के आठ भाव (कार्य) हैं। धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य–अवैराग्य, ऐश्वर्य तथा अनैश्वर्य इनमें से ज्ञान को छोड़कर शेष सातों भावों से बुद्धि अपने द्वारा ही स्वयं को बान्धती है तथा ज्ञान से अपने को मुक्त करती है।

ऐश्वर्य भाव का पूर्ण विकास होने पर योगी को अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। ऐश्वर्य युक्त होकर योगी इन ऐश्वर्यो को आत्मतत्व न मानकर विवेक ख्याति की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। ऐश्वर्य में फँस जाने पर योगी आत्मतत्व को न पाकर प्रकृतिलीन अवस्था को प्राप्त होता है। विवेक ख्याति के उत्पन्न होने पर ही प्रकृति और पुरुष का अलग–अलग ज्ञान होता है। हृदय ग्रन्थि व अज्ञान ग्रन्थि का भेदन उसी अवस्था में होता है, **' भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यते सर्व संशयाः '** की उक्ति उस अवस्था में चरितार्थ होती है। विवेक ख्याति उत्पन्न होने पर वैराग्य के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है जिसमें द्रष्टा (आत्मा) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। तभी कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है जो कि छः प्रकार के मुक्तियों में सर्वोत्कृष्ट मुक्ति है। निःश्रेयस सिद्धि मोक्ष के लिए योग को छोड़कर कोई दूसरा सुगम पथ नहीं है।

भक्तिरस

भूपेन्द्र 'अकुंश' जलेसर

सरस्वती ! ज्ञानेश्वरी ! सद्ज्ञान का वरदान दे।
सद्ज्ञान की पहिचान दे ; सद्ज्ञान का गुणगान दे।।

ग्रन्थेश्वरी ! पुस्तक थमा दे पुत्र को कल्यान की।
छाया न मन पर पड़ सके अघ, तामसिक अज्ञान की।।

वीणेश्वरी ! वीणा बजा ; ऐसी बजा ; मन मोह ले।
मन डूब जाये नाद में त्रिकुटी की अनुपम खोह ले।।

श्वेताम्बरी ! आलोक देकर दोष–कल्मष को हटा।
मल, आवरण को देहटा ; विक्षेपता को दे हटा।।

विख्यात सित–पदमासनी ! आसन अचल कर दे मेरा।
हो शिथिलता ना ऊँघता ; आशीष ऐसा हो तेरा।।

मम चित्त बैठे ध्यान में परिपक्व करके धारणा।
मेंट देमम योनियों में जनम–मरण की यन्त्रणा।।

जल जायें संचित कर्म फल सद्ज्ञान की सदआग में।
मिल जाये बिन्दु सिन्धु में ; वैराग में ; अनुराग में ।।

शून्य का गुणा–भाग–धन–ऋण कर के पाया शून्य है।
'पूर्णामद :....' की पूर्णता जड़ शून्य में चित् शून्य है।

मातेश्वरी ! दे तटस्थता या पिण्ड हो या अण्ड हो।
व्यापूँ सकलाखण्ड में ; आकार मण्डल अखण्ड हो।।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/15-17

OCTOBER 2016

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______

______

______

□□□□□□

महिमा भगवान की !

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

अथर्व . 10, 8, 32

अर्थात्

यह भगवान की महिमा है कि वह न बूढ़ा होता है, न मरता है, केवल वही एक रस रहता है। शेष सब मृत्यु द्वारा ग्रसे जाते है।

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा